पिछड़े वर्ग शिक्षा में, क्यों पिछड़े?

डॉ. संध्या सिलावट,
उपायुक्त, राज्य कर,
इन्दौर, मध्य प्रदेश, भारत

कमजोर संवर्ग अर्थात् अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग जो बुनियादी सुविधाओं से वंचित हैं। विशेषतया इन सभी वर्गों की महिलाएँ जो पुरुषों की तुलना में और अधिक पिछड़ी हुई हैं, सभी कमजोर संवर्ग के अन्तर्गत आते हैं।

रोटी, कपड़ा और मकान पहले केवल तीन ही मूलभूत आवश्यकताएँ थीं परन्तु अब रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा और स्वास्थ्य पाँच वस्तुएँ मूलभूत आवश्यकताओं में गिनी जाती हैं। शिक्षा से ही व्यक्ति विवेकशील बनता है, इसलिए प्रारंभ से ही दलित वर्गों को शिक्षा से वंचित रखा गया। उनके कान में यदि वेद का एक शब्द पड़ जाए तो पिघला सीसा उनके कानों में भरवाने का आदेश धर्माचार्यों ने निकाल रखा था। मुस्लिम काल में भी वह शिक्षा से वंचित रखे गए। काँग्रेस अध्यक्ष एनीबेसेन्ट का मानना था कि "वंचित वर्गों के बच्चों को सबसे पहले तो साफ-सफाई, मर्यादित व्यवहार और शिक्षा के मूल तत्वों का ज्ञान जरूरी है। सदियों से इनका रहन-सहन इसी ढर्रे पर चल रहा है। इन्हें अन्य जातियों के साफ-सुथरे और खाते-पीते बच्चों के बीच बैठने लायक बनाने के लिए कई पीढ़ियों तक शुद्ध, पौष्टिक भोजन सेवन करना होगा और साफ सुथरा रहने का सलीका सीखना होगा।"(1)

कमजोर संवर्गों के शिक्षा से वंचित होने के कई कारण हैं, जैसे सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक व शैक्षणिक आदि। कमजोर संवर्गों का शिक्षा से वंचित होने के सर्वाधिक आधारभूत कारण सामाजिक हैं।

सामाजिक कारण : हंटर आयोग 1892 जो भारतीय शिक्षा प्रणाली का अध्ययन करने के लिए गठित था जिसकी रिपोर्ट थी कि अछूत विधार्थी जब विद्यालय में गए तो उनसे पुस्तकें बलात् छीन ली गईं। सवर्ण सदैव से दलितों को शिक्षा से वंचित रखना चाहते थे। अछूत विद्यार्थियों को शिक्षक व छात्र कक्षाओं में बैठने नहीं देते थे। प्रतिष्ठित विद्यालयों में उनका प्रवेश निषिद्ध था। "डब्ल्यू ब्रिंग्स ने उत्तरप्रदेश के संदर्भ में लिखा है कि 1909 से 1910 में 12625 स्कूलों में एक भी स्कूल ऐसा नहीं था जहाँ दलित छात्र पढ़ते हों।"(2)

नागार्जुन ने ठीक ही कहा है -

जमींदार है, साहूकार है, बनिया है, व्यापारी है,

अन्दर-अन्दर विकट कसाई, बाहर खद्दरधारी है।।

कमजोर वर्गों की बालिकाओं का कम आयु में ही विवाह हो जाता है। लड़कियों पर घर के कार्य का बोझ अपेक्षाकृत अधिक होता है। उनके बारे में धारणा होती है, कि लड़कियों को तो आजीवन घर का ही कार्य करना है, जब आजीवन चूल्हा-चौका ही करना है तो पढ़ लिखकर क्या करेंगी? इसलिए उसे घर के काम में ही दक्ष बनाने पर जोर दिया जाता है। उनकी स्थिति दोयम दर्जे की होती है, इसलिए जहाँ तक संभव हो उन्हें घर के कार्यों तक ही सीमित रखा जाता है। सामाजिक वातावरण ऐसा है कि माँ-बाप, सोचते हैं कि

यदि बाहर निकली तो लोग ऊँगली उठाएँगे। यदि पढ़ लिख गई तो वह फिर घरेलू कार्य नहीं करेगी। यदि करेगी तो नखरे करेगी।

यदि पढ़ाया-लिखाया भी जाता है तो केवल इतना कि, वह रामचरितमानस बांच ले और परिजनों से पत्र व्यवहार कर ले। इससे अधिक आवश्यकता नहीं समझी जाती।

सामाजिक-धार्मिक कार्यों के लिए भी विद्यार्थी बार-बार विद्यालयों से गायब रहते हैं। जिन दिनों खेतों में फसलों की कटाई या बुवाई चलती है विद्यार्थी उन दिनों विद्यालय की कक्षाओं में अनुपस्थित रहते हैं।

कई बार माता-पिता बच्चों को पढ़ाने के इच्छुक होते हैं पर विद्यालय घर से दूर होता है या वहाँ का वातावरण खराब होता है। ऐसे में माँ-बाप बच्चों को पढ़ने नहीं भेजना चाहते।

कई बार बच्चों में अपने काम के प्रति हीनभावना भी उन्हें अपने काम या पढ़ाई से दूर कर देती है। एक सफाईकर्मी महिला का बेटा सातवीं कक्षा में पढ़ता था। उसकी माँ की जहाँ जागीरी थी वहाँ उसके स्कूल के अध्यापक निवास करते थे। बालक उस क्षेत्र में सफाई कार्य करने के लिए जाने से हिचकता था क्योंकि, मास्टरजी उसे पहचानते थे। वह वहाँ जाने से कतराता और बीमार माँ से तरह-तरह के बहाने करता। हमारे देश के सामाजिक ढांचे में हाथ द्वारा किए जाने वाले श्रमसाध्य कार्य को नीची निगाह से देखा जाता है। इसलिए भी लोग ऐसा कार्य करने से बचते हैं। पढ़ने लिखने वाले बच्चे अपने परिवार की चाय की दुकान, पान की दुकान या जूते सुधारने की दुकान पर बैठना नहीं चाहते। वे सोचते हैं कि लोग उन्हें ऐसा करते देख क्या सोचेंगे? इसलिए भी कमजोर वर्गों के परिवार अपने बच्चों को शिक्षा दिलवाने से कतराते हैं क्योंकि, उन्हें लगता है कि उनका बच्चा फिर पैतृक कार्य को करने से मना करेगा।

बच्चा हिन्दी माध्यम (या मानक भाषा के) विद्यालय में अच्छी प्रकार पढ़ाई करता है। अपने सभी विषयों में बहुत योग्य है परन्तु उससे सफाईकर्मी भी पूछता है, तुझे अंग्रेजी बोलनी आती है कि नहीं आती? यदि अंग्रेजी नहीं आती तो समझिए उसे कुछ नहीं आता। रिश्तेदार भी पूछते हैं, क्यों तू अंग्रेजी बोल लेता है। जैसे प्रत्येक योग्यता का मापदण्ड अंग्रेजी भाषा का आना ही है।

पारिवारिक कारण : कमजोर वर्गों के बच्चों पर परिवार के कार्यों का भी अत्यधिक बोझ होता है। माँ-बाप, बाहर काम करते हैं या नहीं भी करते तब भी बहुत सारे घरेलू कार्य अपने बच्चों से ही करवाते हैं। कमजोर वर्गों के परिवारों में अधिकतर माहौल ऐसा होता है कि वह घरेलू कार्य ज्यादा से ज्यादा अपने बच्चों से करवाने में तरजीह देते हैं स्वयं खाली बैठना ज्यादा पसंद करते हैं। बहुत कम परिवार ऐसे मिलेंगे जहाँ बच्चों को घरेलू कार्यों से छूट हो और उन्हें बार-बार पढ़ाई के लिए प्रेरित किया जाता हो। जबकि, सवर्ण वर्गों के माता-पिता पूर्णरूपेण अपने बच्चों की पढ़ाई की उन्नति के लिए समर्पित रहते हैं।

आर्थिक कारण :- कमजोर वर्गों के बच्चे उनके परिवार के लिए अर्थोपार्जन का साधन रहते हैं। उनके दो हाथ मजदूरी करके घर में कुछ धन लाते हैं। वे उन्हें स्कूल भेजेंगे तो धन आएगा कहाँ से?

"शिक्षा यानि मानव विकास के लिए निवेश जैसी अवधारणा भी ग्रामीण समाज के कमजोर वर्गों के लिए शायद एक आकर्षक अवधारणा नहीं है। क्योंकि, वे जानते हैं कि कार्यात्मक साक्षरता और थोड़ी स्कूली पढ़ाई उनकी खेती की उत्पादकता बढ़ाने में योगदान देने या उनकी आय में वृद्धि करने के बजाय शायद उनकी जिन्दगी और भी जटिल कर दें।" **शिक्षाविद् श्री पोरोमेश आचार्य** (3)

गरीब माँ-बाप मध्याह्न भोजन के लालच में बच्चों को जिन स्कूलों में भेजते हैं वहाँ पढ़ाई का स्तर तो होता ही नहीं। ये शिक्षक खाना बनाने और खिलाने की तैयारी में लगे रहते हैं। कागजी खानापूर्ति कर लेते हैं। शिक्षक पूरी तरह प्रशिक्षित भी नहीं होते। ऐसे अप्रशिक्षित शिक्षक बच्चों को क्या पढ़ाएंगे?

अधिकांश सरकारी विद्यालय दलित क्षेत्रों में खोलने की बजाय सवर्ण क्षेत्रों में खोले गए हैं। ऐसे स्कूलों में बच्चों का जाना सहज नहीं होता। वहाँ उन्हें अनेक प्रकार की बातों व भेदभाव को प्रतिदिन झेलना पड़ता है।

शिक्षक व स्कूल दोनों उन्हें अपनी ओर से आकर्षित करने में अक्षम हैं। ना ही स्कूलों का वातावरण उनके मन को रमाने वाला होता है। शिक्षक मारपीट के तरीके व रटन्त विद्या से उन्हें सिखाना चाहते हैं।

कहीं-कहीं सरकारी विद्यालयों की हालत बिलकुल खस्ता है। दीवार व छत अब गिरी तब गिरी। खण्डहर में भी मासूम बच्चों का स्कूल चलता है। एक ही कमरे में कई-कई कक्षाओं के विद्यार्थी बैठकर विद्यार्जन करते हैं। ऐसे में शिक्षक उन्हें क्या पढ़ा पाते होंगे?

नागार्जुन के शब्दों में-

घुन खाये शहतीरों पर की बारहखड़ी विधाता बांचे,

फटी भीत है, छत चूती है, आले पर विस्तुइया नाचे

बरसाकर बेबस बच्चों पर मिनट मिनट में पांच तमाचे

इसी तरह से दुखरन मास्टर गढ़ता है आदम के सांचे।

(युगधारा)

14 जुलाई 2008 को अमर उजाला ने अपने हवाले से बताया कि, कहीं शिक्षकों की भरमार है कहीं एक भी नहीं है। आम्बेडकर विद्यालयों का ताला भी नहीं खुला। समाचार पत्र के अनुसार 10 विद्यालयों में से 03, 8वीं तक के तथा 07, पांचवीं तक के विद्यालयों में छात्रों की कुल संख्या 583 है जबकि शिक्षक सिर्फ 10 हैं। मानक के अनुसार 15 शिक्षक तथा कक्षाओं के अनुसार पांचवी तक के लिए 35 और आठवीं तक के लिए 15 शिक्षकों की आवश्यकता है। परन्तु यहां पढ़ाने के लिए स्कूल नहीं बनाए गए, वोट के लिए बनाए गए हैं। [4]

दलित वर्गों के ही बच्चे जूता पॉलिश, होटलों पर कार्य, ठेलों पर और अन्य कई प्रकार से कार्य करते हैं। खतरनाक उद्योगों जैसे आतिशबाजी, गलीचा उद्योग व माचिस आदि में लगे बच्चे और अप्रवासी मजदूरों के बच्चे कब अपने लिए समय निकाले, क्या वे भारत के भावी नागरिक नहीं है। छोटे किसानों के बच्चों के बारे में कवि ने कितना सटीक कहा है-

जब बाप मरा तब यह पाया

भूखे किसान के बेटे ने

घर का मलबा टूटी खटिया

कुछ हाथ भूमि वह भी परती

चमरौंधे जूते का तल्ला

छोटी टूटी बुढ़िया औंगी

दरकी गोरसी बहता हुक्का

लोहे की पत्ती का चिमटा

1981 में न्यायमूर्ति वी.एम. तारकुण्डे की पहल पर और जे.पी. नायक की अध्यक्षता में बने 'सिटीजंस फॉर डेमोक्रेसी' समूह ने शिक्षा पर एक प्रतिवेदन 'एज्यूकेशन फॉर अवर पीपुल' तैयार करके देश के सामने रखा था- शिक्षा शून्य में काम नहीं करती, यह उस समाज के चरित्र को प्रतिबिम्बित करती है जो इसे समर्थन देता है और जिसको यह लाभ पहुँचाती है। भारतीय समाज जो दो वर्गों में बंटा है और जिसमें गंभीर स्तर की गैर-बराबरी है, सचमुच में एक दोहरा समाज है, जहाँ आर्थिक और राजनैतिक सत्ता उन वर्गों के पास है जो सम्पन्न हैं और जो ऊपरी 30% वाले आर्थिक समूह में आते हैं। जबकि अधिकतर जनता हाशिये पर है और जीवन की कोई सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हैं। एक से सामाजिक ढाँचे के तहत शिक्षा में बराबरी लाने के लिए कोई भी परिवर्तन संभव नहीं है। जरूरत यह है कि सभी जनों को अच्छी शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए शिक्षा के साथ-साथ गरीबी और गैर बराबरी मिटाने के प्रयास होने चाहिए।" (5)

ओ मजदूर ओ मजदूर

तू ही सब चीजों का कर्त्ता

तू ही सब चीजों का कर्ता

तू ही सब चीजों से दूर

वर्तमान समय में शिक्षा का निजीकरण कर उसे महंगा बना दिया गया है। नामी-गिरामी पब्लिक स्कूलों की फीस इतनी अधिक होती है कि उसे मध्यम वर्ग भी वहन नहीं कर सकता तो कमजोर वर्ग उसे कैसे वहन करेगा?, आज इन स्कूलों से निकलने वाले बच्चे क्या सभी ऊँचे बौद्धिक स्तर के और अपने विषयों में पारंगत होते हैं? उत्तर मिलेगा, नहीं। जितने भी पब्लिक स्कूल हैं वहाँ शिक्षा के जरूरी मानकों की अनदेखी की जाती है। आज सभी निजी शिक्षा संस्थानों का राजनीतिकरण हो चुका है। तरह-तरह के प्रयास करके ये संस्थान अपने लिए आयकर में छूट से लेकर विभिन्न सुविधाएँ प्राप्त कर लेते हैं और विद्यार्थियों से तरह-तरह के फण्ड वसूलते हैं। अपने कर्मचारियों तक का शोषण करते हैं। फिर भी ये संस्थान अपना क्षेत्र बढ़ाते जा रहे हैं। सरकार न तो इनकी उपयोगिता पर प्रश्नचिन्ह खड़ा करती है और ना ही इनके दायित्वों का निर्धारण करती है।

पहले हिन्दी माध्यम से पढ़े पाँचवीं तक के बच्चों को दस तक पहाड़े याद रहते थे, परन्तु अब के अंग्रेजी माध्यम के दसवीं कक्षा में पढ़ रहे विद्यार्थी को भी बारह तक पहाड़े बमुश्किल याद रहते हैं। विद्यार्थियों का अंकों में जो प्रतिशत बढ़ रहा है वह इन स्कूलों की पढ़ाई के स्तर का मापदण्ड नहीं है। आज बच्चे कोचिंग

संस्थानों में अलग से ट्यूशन लेते हैं और माता-पिता भी पूर्णतया उनकी पढ़ाई के प्रति समर्पित रहते हैं, वही बच्चे टॉपर बनते हैं बाकी इन आलीशान विद्यालयों में पढ़ने वाले औसत बच्चे को भी क्या आता है? कभी उसे परख कर देखिए। अभी कुछ दिन पहले दैनिक भास्कर में एक खबर छपी थी कि, भारतीय विद्यार्थियों के शिक्षण में गुणवत्ता की व्यापक कमी होती जा रही है। किसी विदेशी विद्वान का विचार था कि, उनका अंकों का प्रतिशत तो बढ़ रहा है परन्तु प्राप्त ज्ञान में गुणवत्ता घटती जा रही है।

पब्लिक स्कूलों के मालिक अमीर और अमीर होते जा रहे हैं। 24 जनवरी 2004 को दिल्ली हाईकोर्ट ने जब इन स्कूलों को 25% सीटें आर्थिक रूप से कमजोर बच्चों से भरने के लिए कहा तो उन्होंने साफ मना कर दिया।

आज कितनी ही बार समाचार-पत्रों में छपता है, कि अमुक विद्यार्थी ने पैसे की कमी के कारण आत्महत्या कर ली, उसके परिजन उसे ऐच्छिक संस्थान में प्रवेश नहीं दिला सके या खर्च वाहन न कर सके।

शान्ति नहीं तब जब तक सुख भाग न नर का सम हो।

नहीं किसी को बहुत अधिक हो नहीं किसी को कम हो।।

"विभिन्न संकायों में दलित विद्यार्थियों के साथ-साथ उच्च शिक्षित दलित प्राध्यापकों की संख्या भी बहुत कम है।" दस विश्वविद्यालयों और आई.आई.टी. चैन्नई के आंकड़े चौंकाने वाले हैं। इनमें तैनात 1457 प्रोफेसरों में से केवल 8 दलित हैं। इसी प्रकार एसोसिएट प्रोफेसर रीडर पद पर 1438 में से कुल 10 दलित हैं। असिस्टेंट प्रोफेसर रीडर पद पर 1438 में से कुल 10 दलित हैं। असिस्टेंट प्रोफेसर रीडर पर दलितों के लिए 15 प्रतिशत आरक्षण के बावजूद 1578 में से कुल 51 पदों पर ही दलित नियुक्त हैं। चैन्नई आई.आई.टी. में 422 शिक्षकों में से कुल दो ही दलित वर्ग से हैं।" (6)

"भारत का संविधान शिक्षा में विभेद के लिए कड़ा प्रावधान करता है। अनु. 29 (2) भाषाई आधार पर विभेद को कानून जुर्म मानता है। अनु. 30 (1), अनुच्छेद 30 (2), अनु. 351, अनु. 15(4), 19(5), अनुच्छेद 335, 338, 339 इत्यादि उपबंध संघ और राज्यों को स्पष्ट निर्देश देते हैं कि कमजोर वर्गों की शिक्षा की बेहतरी के हर संभव उपाय करें। यहाँ भी बुरी तस्वीर उभरती है।

नेशनल फैमिली हेल्थ सर्वे (2005-06) के अनुसार 55.09 प्रतिशत अनुसूचित जाति की और 66.0 प्रतिशत अनुसूचित जनजाति की महिलाएँ एकदम अनपढ़ हैं। 22.8 प्रतिशत अनुसूचित जाति के और 34.7 प्रतिशत अनुसूचित जनजाति के पुरुष बिल्कुल अनपढ़ हैं।

कक्षा 1 से 5 के बीच पढ़ाई छोड़ने वाले बच्चे (2007) -

अनुसूचित जाति	41.47%
अनुसूचित जनजाति	51.37%

कक्षा 1 से 8 के बीच पढ़ाई छोड़ने वाले बच्चे -

अनुसूचित जाति	59.91%
अनुसूचित जनजाति	68.67%

कक्षा 1 से 10 के बीच पढ़ाई छोड़ने वाले बच्चे –

अनुसूचित जाति	71.92%
अनुसूचित जनजाति	80.29%

शिक्षा पाने का अधिकार मूल अधिकार बना -

उच्चतम न्यायालय ने मोहिनी जैन बनाम कर्नाटक राज्य (1992), 3 एससीसी 666 में यह निर्धारित किया कि शिक्षा पाने का अधिकार भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत प्रत्येक नागरिक का मूल अधिकार है। 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा देने के लिए राज्य बाध्य है।

परन्तु सभी को पता है कि राज्य कैसी शिक्षा का प्रबंध कर पा रहा है।

"कोठारी कमीशन ने 1964-66 में अपनी रपट में सिफारिश की भारत में सम्पूर्ण शिक्षा पर राष्ट्रीय आय का 6% तक खर्च करना जरूरी है। फिर भी यह प्रतिशत चार से भी कम रहा है। इससे पता चलता है कि सरकार शिक्षा के बारे में कितनी गंभीर है।" (8)

कवि नागार्जुन ने ठीक ही कहा है -

पांच वर्ष की बनी योजना एक नहीं दो तीन।

कागज के फूलों ने ले ली सबकी खुशबू छीन ।।

वर्तमान युग प्रतियोगिता का युग है। जहाँ शिक्षा प्राप्त करना जटिल है। वहाँ उच्च स्तर की शिक्षा भी अत्यंत महंगी कर दी गई है। प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी के लिए जो संस्थान खुले हैं वे केवल अमीरों द्वारा ही उपयोग किए जा सकते हैं। महंगी पुस्तकें भी केवल धनवान लोग ही खरीद सकते हैं। दलित विद्यार्थी जो पहले से ही पढ़ाई में पिछड़ा होता है न तो इन संस्थानों की फीस का बोझ उठा सकता है और न ही राष्ट्रीय स्तर के संस्थान जैसे- आई.आई.टी., मेडिकल कॉलेज और आई.एम.एम. संस्थानों की लाखों की फीस भर सकता है। पहले दलित पढ़ ही नहीं सकता, पढ़ता है तो अनेकों प्रकार की सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक परेशानियाँ झेलता है। ऊपर से महंगे शैक्षणिक संस्थान, जहाँ उनकी जनसंख्या के अनुपात में उनकी सीटें भी कम हैं। उसे तो वहीं रह जाना पड़ेगा, पिछड़ा हुआ और दबा हुआ। शिक्षा भी उसे मुख्य धारा से नहीं जोड़ पाती।

शैक्षणिक कारण :- दलित विद्यार्थी के परिजन अधिकांशतः अनपढ़ होते हैं। यदि उस विद्यार्थी को उसकी मातृभाषा में शिक्षा दी जाए तो शायद वह अधिक सीखें, परन्तु उन्हें शिक्षा देने का माध्यम अंग्रेजी-हिन्दी या अन्य मानक भाषाएँ रहती हैं। जिसे वे जानते ही नहीं है। प्रयत्न करने के बावजूद भी बहुत कम सीख पाते हैं।

दूसरे उन्हें उनके परिवारों में पढ़ाई-लिखाई का माहौल नहीं मिलता। माता-पिता उनकी पढ़ाई-लिखाई को समझ ही नहीं सकते तो उनकी पढ़ने में क्या मदद करेंगे? दोनों ही शारीरिक श्रम अधिक करते हैं और चाहते हैं उनके बच्चे शारीरिक श्रम द्वारा उनकी मदद करें।

तीसरे बुनियादी सुविधाओं की कमी के कारण भी उन्हें अपने दैनिक कार्यों को निपटाने में अपेक्षाकृत अधिक समय लगता है। शौचालयों का न होना, पानी के लिए लंबी कतारें, तंग-बदबूदार बस्ती और घरेलू कार्यों का बोझ।

श्वानों को मिलता दूध-वस्त्र भूखे बालक अकुलाते हैं।

माँ की छाती से चिपक ठिठुर जाड़े की रात बिताते हैं।।

(दिनकर)

अंग्रेजी भाषा आज विश्व भाषा के रूप में प्रयुक्त हो रही है। दलित अधिकांशतः हिन्दी माध्यम से पढ़े होते हैं। वे अंग्रेजी भाषियों के साथ अपना तालमेल बमुश्किल बिठा पाते हैं और हीनभावना से ग्रसित रहते हैं। आजकल अंग्रेजी इतनी आवश्यक हो गई है कि विद्यार्थी अंग्रेजी न आने पर आत्महत्या कर रहे हैं। फिर दलित तो भारतीय मानक भाषाओं में ही पिछड़े हुए हैं तो अंग्रेजी के साथ कैसे कदम मिलाएं? इस कम्प्यूटर युग में अंग्रेजी आने पर ही आप कम्प्यूटर पर कार्य कर सकते हैं। क्योंकि, कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर अंग्रेजी आधारित होते हैं। दलित अंग्रेजी भाषा में अत्यंत पिछड़े हुए हैं। तकनीकी ज्ञान में प्रशिक्षित होने पर भी अंग्रेजी न आने से उन्हें यथोचित महत्व नहीं मिलता। बड़ी-बड़ी कंपनियों व बड़े-बड़े मॉलों में उनकी उपस्थिति न के बराबर है। दलितों में अंग्रेजी भाषा व कम्प्यूटर तकनीक में प्रशिक्षित व्यक्ति अत्यंत कम हैं। सार्वजनिक व निजी क्षेत्र में उच्च वर्ग का ही दबदबा है। यदि दलित बहुराष्ट्रीय कम्पनी में कार्य करते हैं तो उन्हें जाति छिपाकर कार्य करना पड़ता है क्योंकि, वहां भी सवर्णों का राज है। दलित तो छोटे-छोटे पदों पर ही कार्य कर पाते हैं। हर क्षेत्र में पिछड़े ही रह जाते हैं।

हो यह समाज चिथड़े चिथड़े

शोषण पर जिसकी नींव पड़ी ।।

यदि शिक्षा का प्रसार करना है तो प्रत्येक दलित को इसमें तन, मन और धन से जुटना होगा। उसकी उपलब्धता व उपयोगिता पर विशेष ध्यान देना होगा। उन्हें प्रेरित करना होगा कि वे व्यर्थ की सामाजिक व धार्मिक परम्पराओं (सामूहिक भोजों) आदि को करने की बजाय बच्चों की शिक्षा पर खर्च करें व ध्यान दें।

सादा जीवन जिएं, बाजारवाद की उपभोक्तावादी संस्कृति के शिकार न बनें, अपने बच्चों की आधारशिला मजबूत करें, उसे बुनियादी शिक्षा व उच्चशिक्षा यथार्थ में दिलवाएं। बड़े-बड़े भौतिक व आलीशान ढांचों से प्रभावित न हों। बच्चों के लिए सरकार व कमजोर संवर्ग दोनों मिलकर एक ऐसी व्यवस्था बनाएं कि विद्यार्थी विवेकशील बनें। सहयोग की भावना हो, कठिनाइयों, में भी आत्मविश्वास न खोएं, निर्णय लेने की क्षमता भरपूर हो, स्वयं का आत्मसम्मान व दूसरों का मान बनाएं रखें। विषय की उसे आधारभूत जानकारी हो, ऊपर-ऊपर तैरे नहीं। शिक्षा जो उसे अपनी संस्कृति पर गौरव करना सिखाए। साथ ही साथ तेजगति से भागती दुनिया में वह अपने वर्चस्व को बनाकर रख सके व जीए।

न्यायोचित अधिकार मांगने से न मिलें तो लड़ के।

तेजस्वी छीनते समर को जीत या कि खुद मर के ।।

किसने कहा पाप है समुचित स्वत्व प्राप्ति हित लड़ना।

उठा न्याय का खड़ग समर में अभय मारना मरना ।।

(दिनकर)

संदर्भ -

(क) लेख शिक्षा के दायरे में दस्तावेज, कमेरी दुनिया, अंक मार्च 08, डॉ. विवेक कुमार, (1) , (2), (6)

(ख) लेख आखिर अभावग्रस्त लोग शिक्षा से क्यों वंचित रह जाते हैं? कमेरी दुनिया, अंक जुलाई, 07, साधना सक्सेना (3), (5), (8)

(ग) लेख हत्या भविष्य की ! कमेरी दुनिया, अंक सितम्बर, 08, राजेश दिवाकर (4)

(घ) लेख संवैधानिक अधिकार : क्या खोया, क्या पाया ? कमेरी दुनिया, अंक जनवरी, 2008, एस. विक्रम (7)

डॉ. संध्या सिलावट,
उपायुक्त, राज्य कर,
इन्दौर, मध्य प्रदेश, भारत